आदिवासी-संस्कृति विश्व-संस्कृति की ओर

आदिवासी दिवस 2011 वर्ष के अवसर पर शायद यह दिखाना अच्छा होगा कि कैसे आदिवासियों की संस्कृति कुछ बातों में विश्व-संस्कृति बनती जा रही है, क्योंकि साधारणतः यह कहा जाता रहा है कि आदिवासियों की संस्कृति नहीं है अथवा नही ंके बराबर है। यहाँ तक माना जाता है कि आदिवासी जंगली हैं अर्थात् असभ्य हैं, उनके पास उठने-बैठने के कोई नियम नहीं हैं ।

आदिवासी संस्कृति की पहली देन - सामूहिक संगीत

जब आदिवासी नाचते-गाते-बजाते हैं, तो एक ही ताल में ताल मिलाते हुए वे अपना हाथ, पैर, सिर आदि हिलाते हैं और एक साथ नाचते, गाते व बजाते हैं । उनके संगीत की यह प्रवृत्ति अब दुनिया भर में देखने को मिल रही है चाहे वह पाश्चात्य संगीत में हो या भारतीय सिनेमा में । इस संगीत की विषेशता यह है कि इसमें लोग सहभागी होते हैं न कि दर्शक बनकर रह जाते हैं जौभि कि सहभागी होने के लिए बाधय नहीं किया जाता है । अतः सरल, सहज व सामूहिक रीति से आनन्द का रस लेना आदिवासी संगीत की विषेशता है ।

पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत हो अथवा भारतीय शास्त्रीय संगीत, दोनों में साधारणतः एक पुरुष व एक स्त्री का नाचना अपनी विशिष्ट-विषेशता रखता है । इसकी अपनी महत्ता है, फिर भी आज के लोकप्रिय संगीतों में एक साथ नाचना, गाना व बजाना प्रचलित हो चुका है । भारत की संस्कृतियों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि बोलीवुड की संगीत परम्परा नयी दिशा ले चुकी है। यह बात प्रमाणिक है कि सदियों से झारखण्डवासी एक साथ नाचते-गाते-बजाते रहें हैं, जिनकी संगीत प्रवृत्ति आज विश्व में पायी जा रही है। हम कह सकते है कि झारखण्डवुड अपनी पहचान बना चुकी है ।

आदिवासी संस्कृति की दूसरी देन - नेतृत्व भावना

यह शिकायत अब भी सुनने को मिलता है कि आदिवासियों के बीच नेता नहीं हैं, कि उनकी आवाज कोई नहीं है । जो बात सच है वह सच है, लेकिन शायद यह समझना होगा कि आदिवासियों की नेतृत्व भावना कैसी होती है । वे सदियों से अपना प्रतिनिधि हर तीन साल में बदलते हैं, जो उनके साथ मिलकर निर्णय लेता तथा उनके द्वारा लिये गये निर्णय को ही फलीभूत करता है । साधारणतः वह नया निर्णय अकेले कभी नहीं लेता अपितु अपने सलाहकारियों के साथ, जिन्हें समुदाय ही चुनता है, निर्णय को कार्यरूप देते समय सलाह व सहयोग लेता रहता है । इस कारण आदिवासियों के बीच प्रजातंत्र का भाव हरदम रहा है ।

कहने का तात्पर्य यह कि सम्पूर्ण समुदाय एक साथ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है न कि केवल एक दो व्यक्ति । अपनी सत्ता के बाहर नेता भी प्रजा की तरह जीवन व्यतीत करता है । ये ही कारण हैं कि सामन्तवाद का विरोध झारखण्डवासियों ने हरदम किया है चाहे वे मुगलों के समय हो अथवा ब्रिटिशा के समय । इतिहास इसका साक्षी है । भारतीयों ने प्रजातंत्र झारखण्डवासियों से नहीं सीखा है और न उनके लिए दी गयी पाँचवीं सूची की कद्र की है । यही कारण है कि भारतवासी आदिवासियों को शायद नहीं समझ पाये हैं और उन्हें मात्र अज्ञानता की प्रतिमूर्ति समझते हुए पेश आते हैं । इसके बावजूद इतना तो शायद स्वीकार करना होगा कि भारत प्रजातंत्र को स्वीकार कर रहा है, और उसे जीने की कोशिश कर रहा है । आदिवासियों की शासन-प्रणाली अब विश्व-प्रणाली बनती जा रही है, जौभि कि वह अन्य स्रोतों से भारत आयी है ।

आदिवासी संस्कृति की तीसरी देन - आर्थिक व्यवस्था

कहा जाता है कि आदिवासी बचत करना नहीं जानते। वे बैंकों में पैसा नहीं रखते । सच है कि पहले उनकी आवश्यकताएँ सीमित रहीं हैं और उनके पास जल-जंगल-जमीन से जीविका के साधान पर्याप्त थे । आज जब उनसे साधन छिन गये हैं तो जीना आसान नहीं रह गया है । फिर भी उनके पास अब तक उनकी अपनी आर्थिक व्यवस्था है

। जब उन्हें धान की आवश्यकता होती है, उदाहरणार्थ संस्कारी जीवन के लिए, जैसे छट्ठी, शादी और गमी व कमान, तब गाँव व कुटुम्ब के सब लोग आवश्यक सामग्री जमा करते, न्योता घुसते व भोज-समारोह में सहभागी होते हैं । इतना ही नहीं संबंधित भावी खर्च के लिए चुमावन बैठकर धन जमा करते व उसे परिवार को पंच के माध्यम से सौंप देते हैं। इस कारण ऐसी स्थिति कभी नहीं रही कि कोई भी व्यक्ति बिना संस्कार के समाज में रहे, चाहे वह धनी परिवार का हो अथवा गरीब परिवार का । उनकी आर्थिक व्यवस्था में परस्पर सहयोग की विभिन्न मदद-व्यवस्थाएँ सन्निहित हैं । दूसरे शब्दों में हम यों कहेंगे कि कुटुम्ब के सदस्य और गाँव वाले ही उनके ''बैंक-मनी'' अर्थात् धन हैं । आदिवासी आर्थिक-व्यवस्था रिश्ते पर आधाारित है, यानी परस्पर सहयोग पर टिकी है । जिस दिशा में आज का समाज तेजी से जा रहा है उसमें आर्थिक व्यवस्था के सिद्धान्त कुछ और हैं । उपभोगतावाद पर आधारित अर्थ-शास्त्र परस्पर रिश्ते से वंचित है। फलत: अमीर-गरीब की खाई बढ़ती जा रही है । समाज में अन्न-धन होते हुए भी सबको पर्याप्त नहीं मिल पा रहा है ।

शायद झारखण्डी आदिवासी अर्थ-व्यवस्था का अधययन कर आधुनिक भारत कुछ नयी दिशा ले सकता है । सदियों से अर्थ की समस्या का समाधाान अपने तरीके से झारखण्ड के आदिवासियों ने खोजा था, शायद यह दुनिया की संस्कृति बन जाए । काथलिक कलीसिया ने इस दिशा में अच्छी पहल की थी, जिसका विकास जरूरी है ।

आदिवासी संस्कृति की चौथी देन - न्याय व्यवस्था

झारखण्डी आदिवासी न्याय व्यवस्था अपना विशिष्ट स्थान रखती है । जब कोई गलती करता है अथवा किसी का अन्याय करता है तो शिकायत गाँव के पंच को दिया जाता है । तब पंच सम्पूर्ण सभा को बुला कर अपने सहयोगियों के साथ यह सुनता है कि कसूरवार ने क्या किया और क्यों किया। दोनो पक्षों को सुनने के बाद जब वह फैसला देता है तो वह कभी दोषी को जेल में नहीं डालता, अपितु दोशी को पश्चाताप करने के लिए दण्ड भरवाता है जिससे मेल-मिलाप-भोज का खर्च उठाया जाता है। सामान्यत: उस भोज के बाद दोनों पक्ष एक साथ समाज में उठते-बैठते व जी सकते हैं । इस प्रक्रिया में दोषी पर हाथ नहीं उठाया जाता और न किसी तरह की शारीरिक प्रताड़ना दी जाती है । यदि दोषी अपना दोष स्वीकार नहीं करता तो उसे मात्र समाज-बाहर कर दिया जाता है, अर्थात् उसके व उसके परिवार के साथ कोई बात-चीत नहीं करता और उनके संस्कारी जीवन में भाग नहीं लेता । झारखण्ड के आदिवासियों ने इसी तरह की न्याय-व्यवस्था कलीसिया में पाया अत: कुछ लोगों को ख्रीस्तीय बनने में कोई आपत्ति नहीं हुई । आज कलीसिया भी आदिवासियों की तरह बिना जेल व पुलिस के न्याय-व्यवस्था कायम रखने में समर्थ है । शायद भारतीय समाज को इससे शिक्षा मिल सकती है । यह निश्चित है कि आदिवासी न्याय-व्यवस्था अपना स्थान कलीसिया में पा चुकी है । हो सके यह विश्व-संस्कृति बन जाए ।

उपसंहार

आदिवासियों की संस्कृति में और भी कुछ विशिष्ट विषेशताएँ हैं, किन्तु आज मात्र चार को उजागर करते हुए हम यही कहना चाहते हैं कि किसी भी संस्कृति को तुरंत असभ्य कहना उपयुक्त नहीं और न कोई भी समाज संस्कृति विहीन है । ईश्वर ने प्रत्येक जाति व समाज को विशिष्ट संस्कृति प्रदान किया है, उसे जानने व पहचाने की आवश्यकता है । विश्व आदिवासी दिवस के समारोह द्वारा शायद अपने अस्तित्व के लिए आदिवासी समाज लड़ रहा है । लेकिन अब स्वीकार करने का समय आ गया है कि दुनिया के आदिवासी संस्कृति विहीन नहीं हैं । उनमें भी विश्व को कुछ देने की क्षमता है। अत: उनकी संस्कृति को समझने की जरूरत है जिससे उनकी संस्कृति से दुनिया कुछ सीख सके। वर्तमान स्थिति में चूँकि आदिवासियों ने अपनी संस्कृति का अध्ययन पर्याप्त नहीं किया है, वह साफ-सुथरी नहीं लगती । अत: अपेक्षा है कि आदिवासी अपनी संस्कृति पर शोध कर उसे और परिष्कृत करें । दूसरी तरफ से देखें, तो कहा जा सकता है कि झारखण्डियों की संस्कृति का समाप्त होना सभ्य समाज के लिए घाटा हो सकता है ।